

काव्य दोष

—x—

सामान्य लक्षण :-

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः ।

उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ॥

अर्थात् मुख्यार्थ का अपकर्ष जिससे होता है उसको दोष कहते हैं। और रस मुख्यार्थ है। (अतः मुख्यतः रस के अपकर्ष जनक कारण को दोष कहते हैं।) और मुख्य अर्थात् रस का आश्रय होने से वाच्यार्थ भी मुख्यार्थ कहलाता है। शब्दादि (रस तथा वाच्यार्थ) इन दोनों के (बाधन में) उपकारक होते हैं अतः उनमें भी वह दोष रहता है (और वह पददोष कहलाता है)।

इस प्रकार काव्य-दोष मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं-

- ① रस दोष
- ② अर्थ दोष
- ③ पद दोष

पद-दोष

—x—

दुष्टं पदं श्रुतिकट् च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम् ।

निहितार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम् ॥

सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम् ।

अविमृष्टविधेयांशं विकृष्टमतिकृतं समासगतमेव ॥

अर्थात् ① श्रुतिकट् ② च्युतसंस्कृति ③ अप्रयुक्त ④ असमर्थ ⑤ निहितार्थ ⑥ अनुचितार्थ ⑦ निरर्थक ⑧ अवाचक ⑨ त्रिधाऽश्लील ⑩ सन्दिग्ध ⑪ अप्रतीत ⑫ ग्राम्य ⑬ नेयार्थ ⑭ क्लिष्ट ⑮ अविमृष्ट विधेयांश ⑯ विकृष्टमतिकृत ये ⑰ विशिष्ट काव्य दोष कहे गये हैं। इसमें से प्रथमतः 13 दोष पदगत तथा समासगत दोनों प्रकार के होते हैं, जबकि आन्तिम तीन दोष केवल समासगत होते हैं।

① श्रुतिकट दोष :- श्रुतिकट पुरुषवर्णरूपं दुष्टं यथा । अथति-
कठोर वर्ण रूप पद 'श्रुतिकट' दोष कहा जाता है ।

अनङ्गमङ्गलमृहापाङ्गः शङ्खितरङ्गितैः ।

आलीङ्गितः स तन्वङ्गया कातर्यं लगते कदा ॥

यहाँ पर 'कातर्य' यह पद श्रुतिकट है ।

② च्युतसंस्कृति :- जो पद व्याकरण के नियम के अनुकूल न हो
वह च्युतसंस्कार दोषयुक्त कहलाता है ।

“च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणहीनम्” ॥

यथा -

एतन्मन्दविपक्वति-दुक्फलश्यामौदरापाण्डुर -

शान्तं हन्त फालिन्दसु-दरकरस्पर्शक्षिप्तं लक्ष्यते ।

तत् पल्लीपातेपुत्रि ! कुञ्जरकुलं कुम्भामयाभ्यर्चना-

दीनं त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्राद्यतं मा कृथाः ॥”

यहाँ पर 'अनुनाथते' में च्युतसंस्कृति दोष है । क्योंकि-
'आशीषि नाथः' वार्तिक से नाथ-धातु 'आशीः' अर्थ में प्रयुक्त
होती है, जबकि यहाँ पर याचना अर्थ है ।

③ अप्रयुक्त - सिद्ध होने पर भी कवियों द्वारा उपेक्षित पद 'अप्रयुक्त'
कहलाता है । - “अप्रयुक्तमृतथाऽऽम्नातमापि कविमि-
नद्वितम्” ।

यथा -

यथाऽयं दारुणाचारः सर्वदैव विभाव्यते ।

तथा मन्ये दैवतोऽस्य पिशाचे राक्षसोऽथवा ॥”

“यहाँ पर 'दैवतानि पुंसि' के अनुसार दैवत शब्द

पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार अमरकोश में पठित
होने पर भी किसी महाकवि द्वारा पुल्लिङ्ग में प्रयोग नहीं
किया गया है । अतः यहाँ पर पुल्लिङ्गस्थ दैवत पद अप्रयुक्त
दोष से दूषित है ।

④ असमर्थ दोष :- जो शब्द जिस अर्थ में प्रयोग किया

गया हो, यदि उस अर्थ के बोधन में उसकी सामर्थ्य न हो, तो उसमें असमर्थ दोष होता है। "असमर्थं यत्तदर्थं पश्यते न च तत्रास्य शक्तिः।"

यथा - "तीर्थन्तिरेषु स्नानेन समुपार्जितं सत्कृतिः।"
सुरस्रोतस्विनीमेष हन्ति सम्प्रति सादरम् ॥"

यहाँ पर 'हन्ति' पद गमन अर्थ में प्रयुक्त है यद्यपि 'हन्ति' पद गमनार्थक बोध कराने में असमर्थ है।

③ निहतार्थ दोष :- जो शब्द प्रासिद्धाप्रसिद्ध दोनों अर्थों का वाचक होने पर भी किसी अप्रासिद्ध अर्थ में प्रयुक्त हो, वहाँ पर निहतार्थ दोष होता है -

"निहतार्थं यदुभयार्थमप्रासिद्धैर्दर्थे प्रयुक्तम्।"

यथा - "यावत्करसाईपादप्रहारशोणितकचैर्न दार्यतेन।
मुग्धा साध्वस्तरला विलोक्य परिचुम्बिता सहसा ॥"

यहाँ पर 'शोणित' शब्द अप्रासिद्धार्थक (कुद - कुद लाल) है, जबकि इसका प्रासिद्ध अर्थ रक्त है। अतः यहाँ निहतार्थ दोष है।

④ अनुचितार्थ दोष :- जो शब्द विवाक्षित अर्थ का तिरस्कार करने वाले किसी अर्थ का व्यञ्जक होता है, उसका प्रयोग अनुचितार्थ दोषदूषित होता है, जैसे कि - निम्नालिखित उदाहरण में 'पशु' शब्द विवाक्षितार्थ 'शूरता' का तिरस्कार करके 'कातरता' का बोध करा रहा है -

"तथास्वमि यी सुचिरेण लभ्यते प्रयत्नतः सत्रभिरिव्यते या।
प्रयान्ति तामाशुगतिं यशस्विनी रणाश्वमेधे पशुतामुपागता।"

⑤ अवाचक दोष :- जहाँ पर कोई शब्द अपने विवाक्षित धर्मरूप वाचकता से रहित होता है, वहाँ 'अवाचक दोष' होता है। यथा - निम्नालिखित उदाहरण में 'जन्तु' शब्द

'अदाता' अर्थ में विवक्षित होने पर 'अदाता' अर्थ का वाचक नहीं है।

"अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनाः
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विदिषादरा॥"

⑧ निरर्थक दोष :- "निरर्थकं पादपूरणमात्रप्रयोजनं चादिपदम्।"

अर्थात् केवल पादपूर्तिमात्र के लिये प्रयुक्त च आदि पद निरर्थक होते हैं। जैसे :-

"उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते । मम हि गौरि ।
अभिवाञ्छितं प्राप्स्यस्युः सगवति । युष्मत्प्रसादेन ॥

यहाँ पर 'हि' शब्द पादपूरणार्थक होने से निरर्थक है।

⑨ त्रिधाऽश्लील :- व्रीडा, जुगुप्सा तथा अमङ्गल। मेद से अश्लील दोष तीन प्रकार का होता है।

"त्रिधाति व्रीडाजुगुप्सामङ्गलव्यञ्जकत्वाद्।

जैसे :- निमालीखित पद उदाहरण में 'वायु' शब्द जुगुप्सा का व्यञ्जक होने से 'अश्लील' पद है, क्योंकि 'वायु' पद अपानवायु का भी वाचक होता है :-

"साधनं सुमहद्यस्य यन्नायस्य विलोक्यते ।
तस्य धीशालिनः कोऽयः सहेतारालितां भ्रुवम् ॥"

⑩ सन्दिग्ध दोष :- जहाँ पर कोई पद किसी एक निश्चित अर्थ का वाचक नहीं होता।

यथा -

आलिङ्गितस्तत्रभवान् सम्पराये जयाश्रिया ।

आशीः परम्परां वन्द्यां कर्णे कृत्वा कृपां कुरु ॥"

यहाँ पर 'वन्द्यां' पद 1. बलात् हरण की गई महिलाओं तथा 2. वन्दनीय इन दोनों में से किस अर्थ में प्रयुक्त है, यह सन्दिग्ध है।

⑪ अप्रतीत दोष :- अप्रतीतं यत्केवले शास्त्रे प्रसिद्धम् । जो ^{केवल} शब्द किसी विशेष शास्त्र में प्रसिद्ध है अर्थात् किसी विशेष शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है, उसका प्रयोग साधारण रूप में करना अप्रतीत दोष कहलाता है । यथा -

सम्यग्ज्ञानमज्ञानोत्तरीलेताशयताजुषः ।

विधीयमानमप्येतच्च अवेत्कर्मबन्धनम् ॥

यहाँ पर 'आशय' शब्द वासना (कर्मसंस्कार) के वाचक रूप में योगशास्त्र आदि में ही प्रयुक्त होता है । लोक में नहीं, अतः यहाँ 'आशय' शब्द का प्रयोग अप्रतीत दोष है ।

⑫ ग्राम्य दोष :- 'ग्राम्यं यत्केवले लोके स्थितम्' अर्थात् जो शब्द केवल लोक में प्रयुक्त होता है ।

यथा -

शकाविभावरीकान्तसेकान्तद्युति ते मुखम् ।

तपनीयाशीलाशोभा कटिश्च हरते मनः ॥

यहाँ पर 'कटि' (कमर) यह शब्द ग्राम्य है ।

⑬ नेयार्थ दोष :- जहाँ पर कटि तथा प्रयोजन के अभाव में जी कवि स्वेच्छया मुख्य अर्थ से सम्बद्ध लक्षणीक शब्दों की कल्पना कर लेता है, वहाँ नेयार्थ दोष होता है ।

शरत्कालसमुत्प्लासिप्राणिमाशर्वरीप्रियम् ।

करोति ते मुखं तन्वि चपेटापालनाविधिम् ॥

यहाँ पर चपेटा-पातन अर्थात् चप्पड़ लगाने से 'निस्क्रा' कर दिया है, यह अर्थ लक्षणा से (कवि को अमीठ है) किन्तु यहाँ कटि या प्रयोजन इन लक्षणा के प्रयोजक हेतुओं के अभाव में की गयी लक्षणा दूषित है ।

⑭ फ्लिजट दोष :- फ्लिजटं सर्वोत्कर्षपरिणामी वर्तमानम् ।

अर्थात् जिससे अर्थ की प्रतीति साक्षात् न होकर व्यवधान से होती है, यथा-

अग्निलोचनसम्भूतज्योतीरुद्गमभासीभिः ।

सदृशं शोभतेऽत्यर्थं भूपाल ! तव चेष्टितम् ॥"

अहाँ 'अग्नि' मुनि के नेत्र से उत्पन्न चन्द्रमा की ज्योति के उदय के तबिलने वाले कुसुमों से' यह अर्थ है, जो व्यवधान से प्रतीत होता है। अतः यहाँ पर क्लिष्टत्व दोष है।

(15) अविसृष्टविधेयांशं दोष :- 'अविसृष्टः प्राधान्येनाभिर्दिष्टो विधेयांशो यत्र तत्' अर्थात् जहाँ पर विधेय अंश का प्रधान रूप से निर्देश नहीं होता है, वहाँ अविसृष्टविधेयांश दोष होता है।

यथा- 'स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्ती पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्याम् ।
यहाँ 'मौर्वी' के द्वितीयत्व मात्र की उत्प्रेक्षा है, अतः वह विधेय है। उसको समास में बरव दिया गया है जो उचित नहीं है। अतः दोष है। 'मौर्वी द्वितीयाम्' यह पाठ ही समुचित है।

(16) विकृष्टमतिकृतदोष :- जहाँ पर प्रकृत (विवक्षित) अर्थ के प्रतिबन्धकरूप अप्रकृत (अन्य) अर्थ की कुछे उत्पन्न हो जाती है, वहाँ यह दोष होता है।

यथा- 'धिरकालपरिश्रान्तलोचनानन्दरायिनः ।
कान्ता कान्तस्य सहसा विदधाति गलग्रहम् ॥"

यहाँ 'गलग्रह' पद की जगह 'कण्ठग्रह' से सा प्रयोग होना चाहिये था। क्योंकि इससे अनिष्ट की प्रतीति होती है।

इस प्रकार से सम्मर ने पद-दोषों के विषय में बताया है।

वाक्यगत दोष

— x —

‘अपस्य च्युतसंस्कारमसमर्थ’ निरर्थकम् ।

वाक्येऽपि दोषाः सन्त्येते पदस्यांशेऽपि केचन ॥”

अर्थात् च्युतसंस्कार, असमर्थ और निरर्थक (इन तीन पद-दोषों) को छोड़कर ये सब दोष वाक्य में भी होते हैं और कुछ पदांश में भी होते हैं।

1. वाक्यगत श्रुतिकट्टः:-

‘सौष्ट्वैष्ट वदोस्त्रिदशाष्ट पितृनताप्सीत् सममंस्त बन्धून् ।

व्यजेष्ट षड्वगमिरंस्त नीतो समूलघातं यवधीदरीश्च ॥”

यह श्लोक श्रुतिकट्ट पदों से भरा हुआ है, अतः यह वाक्यगत श्रुतिकट्ट दोषों का उदाहरण है।

2. वाक्यगत अप्रयुक्तत्व:-

‘स रात्रि वा इश्च्यवनो मावुकानां परम्पराम् ।

अनेकमूकतावैश्च द्युत दोषैरस्मृतान् ॥”

यहाँ पर इश्च्यवन पद इन्द्र (अर्थ में अप्रयुक्त है) और ‘अनेकमूक’ पद गूंगा-बहिरापन अर्थ में अप्रयुक्त है। अतः अनेक पदों में होने से यह वाक्यगत अप्रयुक्तत्व दोष है।

3. वाक्यगत निहतार्थता:-

‘सायकसहायवाहोर्मकरध्वजानियमितक्षमाधिपतेः ।

अञ्जकचिमास्वरस्ते भावितरामवार्निप श्लोकः ॥”

यहाँ सायक आदि (सायक, मकरध्वज, क्षमा, अञ्ज, और श्लोक) शब्द (क्रमशः) खड्ग, समुद्र, पृथिवी, चन्द्रमा और यश के चयनरूप में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु लोक में बाण आदि (क्रमशः, बाण, कामदेव, सहन करना, कमल और पद्म) अर्थ में प्रसिद्ध हैं। अतः सायक आदि शब्दों का

रवङ्ग आदि अर्थों में प्रयोग विहितार्थत्व दोष से ग्रस्त है।

④ वाक्यगत अवाचकत्व - प्राप्त्रभाङ्गविष्णुधात्राय विषमारवः करोत्ययम् ।
त्रिंशं सदस्रपणां पलायनपराधनाम् ॥

यहाँ प्राप्त्रभाङ्ग, विष्णुधाम, विषमारव, त्रिंश, पण शब्द क्रमशः प्रकृष्टमैध, आप्लाश, सप्तरव, सद्वीच और दल अर्थों के अवाचक हैं। अतः यह वाक्यगत अवाचकत्व दोष का उदाहरण है।

⑤ वाक्यगत सान्निध्यत्व - सुरालयोल्लासपरः प्राप्तयत्निष्कम्पनः ।
मार्गणप्रवणो भास्वदभरतिरेष विलोकयताम् ॥

इस श्लोक के दो अर्थ हो सकते हैं - रवङ्ग राजा परक और दूसरा भिक्षु परक। अतः यहाँ पर सुर-सुरा, कम्पना-कम्पन, मार्गण और शक्ति आदि शब्द क्रमशः देव, सेना, वाण और विभक्ति के वाचक हैं अथवा शराव आदि परक हैं यह सन्देह होने से यह वाक्यगत सान्निध्यत्व का उदाहरण है।

⑥ वाक्यगत अप्रतीतत्व - तस्याधिमात्रोपायस्य तीव्रसंवेगताजुषः ।
इदमग्निः प्रियप्राप्तौ यत्नः सफलितः सखे ॥

इसमें अधिमात्रोपाय आदि अनेक शब्द केवल योगशास्त्र में प्रसिद्ध होने से अप्रतीत हैं। अतः यह वाक्यगत अप्रतीतत्व का उदाहरण है।

⑦ वाक्यगत ग्राम्यत्व - ताम्बूलभृतगल्लाडयं भल्लं जल्पति भाउषः ।
करोति खादनं जानं सदैव तु यथा तथा ॥

यहाँ पर गल्ल, भल्ल, खादन आदि अनेक शब्द ग्राम्य हैं। अतः यह वाक्यगत ग्राम्यत्व दोष का उदाहरण है।